काश्मीर शैवागम में 'स्पन्द–सिद्धान्त' का दार्शनिक विवेचन

डॉ अमृत लाल विश्वकर्मा
सहायक आचार्य
दर्शनशास्त्र विभाग
राम जयपाल कॉलेज छपरा, जय प्रकाश विश्वविद्यालय
छपरा बिहार–841301

इस सृष्टि के पदार्थों को देखकर एक चिन्तक के मन में भाव उत्पन्न होता है कि इस सृष्टि की रचना कैसे हुई। यह संसार कहाँ से आया। ऐसी जिज्ञासा वेदों में भी प्राप्त होती है। ऋग्वेद जो कि आदि ग्रन्थ माना जाता है, उसमें भी इसी प्रकार के प्रश्न उपलब्ध हैं। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न सम्प्रदायों ने भिन्न–भिन्न मत का प्रतिपादन किया है। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में चार्वाक स्वभाववाद एवं भौतिकवाद का समर्थक है। न्याय–वैशेषिक परमाणुवाद का प्रतिपादन करता है। सांख्यदर्शन विकासवाद एवं अद्वैतवेदान्त मायावाद की स्थापना करता है।

भारतीय संस्कृति, धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में आगम–साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। काश्मीर शैव दर्शन आगम साहित्य का सबसे प्रधान दर्शन है। सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में आगम साहित्य में भी काश्मीर शैव दर्शन सृष्टि की व्याख्या के लिए 'स्पन्द–सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया गया है। शिव किसी कमी की पूर्ति के लिए अथवा किसी प्रयोजन के लिए सृष्टि नहीं करता वरन् जब आनन्द से स्पन्दित होता है तो सृष्टि–क्रिया स्वाभाविक रूप से फूटती है। इसमें शिव की कोई विवशता नहीं है, यह शिव की पूर्ण स्वातन्त्र्य–क्रिया है। दूसरे

शब्दों में सृष्टि शिव का स्पन्द अथवा लीला विलास है, शिव अपने आनन्द में स्पन्दित होकर सृष्टि–क्रिया के रूप में नाचता है अथवा खेल खेलता है।

उपनिषद् में भी यही माना गया है कि सृष्टि ब्रह्म के आनन्द से होती है (आनन्दाद् हि एव खलु इमानि भूतानि जायन्ते) दूसरे शब्दों में, उपनिषद् में **'स्पन्द'** की अवधारणा वर्तमान हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि तान्त्रिक या आगम–साहित्य में जो क्रिया या स्पन्द का मूल सिद्धान्त है वह उपनिषद् में भी वर्तमान है। हाँ, उपनिषद् में वह लगभग बीजरूप में या सूत्ररूप में है उसका पल्लवन नहीं हुआ है। यह काम तन्त्र या आगम ने किया है। यह कहना चाहिए कि उपनिषद् के अधूरे काम को तन्त्र ने पूरा किया है।[1] सृष्टि के कारण के रूप में परमशिव की ही एकमात्र सत्ता काश्मीर शैव दर्शन में है। अपने अन्दर स्वरूप में ही निहित अद्भुत शक्ति के माध्यम से वही स्वयं को ब्रह्माण्ड के रूप में प्रकट करता है तथा विभिन्न अवस्थाओं को धारण करने पर भी वह अपने यथार्थ स्वरूप से च्युत नहीं होता है।[2] सृष्टि और प्रलय शिव की क्रीड़ा है जिसे उसके विमर्शरूपता का उन्मेष और निमेष कहा जाता है।[3]

काश्मीर शैव दर्शन में एक ही तत्त्वातीत 'परम शिव' की सत्ता को स्वीकार किया गया है, जो इस दृश्यमान जगत् में अन्तर्बहिः सर्वत्र प्रकाशित होता रहता है। यही ऐसा तत्त्व है जिससे सृष्टि का विकास होता है। यह सारी सृष्टि उसी से उत्पन्न होती है और फिर उसी में विलीन हो जाती है। परमशिव ही नाना प्रकार की विचित्रताओं के साथ सर्वत्र स्फुरित होता है, उससे अन्यथा कुछ भी नहीं है।[4] इसके अतिरिक्त किसी अन्य तत्त्व के स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना तक नहीं की जा सकती।[5] अपनी व्यक्तावस्था में भी जगत् शिव से भिन्न नहीं होता, उसकी प्रतीति मात्र भिन्न होती हैं, क्योंकि यह सारा जगत् उसी का लीलाविलास है और वही सबका

प्रकाशक है।[6] यह परमशिव ही परम कारण है।[7] यह सारा जगत् हर समय शिवमय बना रहता है।[8] अतः यह सर्व–आकृति–स्वरूप है।

काश्मीर शैव दर्शन में परमशिव अपनी स्वतन्त्र इच्छा से सृष्टि करता है। इस सृष्टि को करने में उसका कोई अपना स्वार्थ नहीं रहता, अपितु यह उसका स्वभाव है। शैव दर्शन में भी अन्य दर्शनों जैसे अद्वैत वेदान्त की तरह अज्ञान और माया का स्थान है, परन्तु इनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। यह उस परमतत्व के अधीन है। इनके रहने और न रहने से, परमशिव के स्वरूप में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आता। इस स्वातन्त्र्य स्वभाव के ही कारण शैव दार्शनिकों ने उसे पूर्ण स्वतन्त्र आनन्दघन परम ईश्वर कहा है।[9] इसी प्रकार स्वेच्छावश लीला–अभिनय करने के कारण ही शिवसूत्र में उसे नर्तक कहा गया है।[10] जगत् का अपने अन्दर आभासन और फिर उस आभासित जगत् का अपने अन्दर विलापन ही उसका स्वातन्त्र्यरूप कर्तृत्व है।[11]

सृष्टि परमशिव का आत्म–प्रसार है। न तो कुछ उसे अलावा है और न ही उससे भिन्न। उससे ही सभी पदार्थ आविर्भूत होते हैं और फिर उसी में विलीन भी हो जाते हैं। सृष्टि शिव का उन्मीलन मात्र है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जब उसकी इच्छा होती है तो उसी में से वह बाह्य प्रकट हो जाता है।[12] यहाँ विश्व के बाह्य प्रकट होने का तात्पर्य यह नहीं है कि वह एकदम से बाहर निकल जाता है या उससे अलग हो जाता है, बल्कि यह है कि जो विश्व शिव में अव्यक्त रहता है वह व्यक्त हो जाता है अथवा उसकी अभिव्यक्ति होने लगती है। शिव स्वयं को जगत् के रूप में अभिव्यक्त करता है। अपनी व्यक्तावस्था में भी जगत् शिव से भिन्न नहीं होता, इसकी प्रतीति मात्र भिन्न होती है। जगत् सदैव शिवमय बना रहता है।[13]

परमशिव स्वयं में परिपूर्ण है। उसे अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं हो सकती। फिर प्रश्न उत्पन्न होता है कि उसे सृष्टि करने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी अथवा नानावैचित्र्य सम्पन्न इस सृष्टि को करने में उसके क्या उद्देश्य निहित हो सकते हं। सष्टि स्वयम् में एक कार्य है। कार्य या तो किसी निमित्त के लिये होता है अथवा स्वभावतः। अपने को अभिव्यक्त करना परमशिव का स्वभाव है। अपने स्वभाव के कारण ही वह विश्व का आभास करने में पूर्णतः निरपेक्ष है।[14] उसके स्वभाव के सम्बन्ध में प्रश्न करना अग्नि की दाहकता पर प्रश्न करना होगा। जलना अग्नि का स्वभाव है और उसके इस स्वभाव में निमित्त नहीं खोजा जा सकता। अतएव जैसे दहकता अग्नि का स्वभाव है उसी प्रकार विश्व का आभास करना परमशिव का स्वभाव है।[15] परमशिव का यह स्वतन्त्र स्वभाव ही उसकी पंचकृत्यकारी क्रीड़ा है, जिसका उद्देश्य उसके स्वात्म–उल्लास के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

काश्मीर शैव दर्शन में सृष्टि–प्रक्रिया को शिव का स्वरूप लक्षण माना गया है; क्योंकि शिव को यहाँ **'पंचकृत्यकारी'**[16] माना गया है। यह पंचकृत्य उसका स्वभाव है। इन पंचविधकृत्यों में वह निरन्तर संलग्न रहता है। इससे स्पष्ट होता है कि सृष्टि भी शिव का स्वाभाविक कृत्य है जो सदैव होता रहता है। अतः यह सृष्टि उसके स्वरूप में ही अनुस्यूत है। यह सृष्टि शिव की क्रीड़ा है और इस ऐश्वर्य की क्रीड़ा के लिए वह अपनी स्पन्द शक्ति से पूर्ण समर्थ है। स्पन्दवान् परमशिव के स्पन्द का उल्लासरूप यह समस्त विश्व उसकी परमेश्वरता का ही एक अंग है। सब कुछ परमेश्वर है और परमेश्वर ही सब कुछ हैं। सृष्टि करना शिव का कोई उद्देश्य नहीं है। इसलिए यह पंचकृत्य उसका स्वभाव है।

काश्मीर शैव दर्शन में सृष्टि–प्रक्रिया को शिव का स्वरूप लक्षण मानने का एक कारण यह भी है कि परमशिव में शिवतत्त्व और शक्तितत्त्व का एक साथ स्फुरण होता है और इन

दोनों के बीच अभिन्न और अविनाभाव सम्बन्ध है।[17] यहाँ पर सृष्टि को शक्ति रूप अथवा शक्ति का विकास माना जाता है।[18] ऐसी स्थिति में सृष्टि को शिव का स्वरूपलक्षण मान लेना स्वाभाविक है। शैव दार्शनिकों की यह मान्यता है कि परमशिव की शीलता उसकी ज्ञानात्मकता है और शक्तितता, क्रियात्मकता और शिवतता उसकी स्थिरता है और शक्तितता गतिशीलता। शिव की शक्ति को काश्मीर शैव दार्शनिक दो भागों में विभाजित करते हैं—पहले भाग में वे चित्त और आनन्द शक्ति को शिव की स्वरूपशक्ति मानते हैं और दूसरे भाग में इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति को शिव की शक्ति मानते है। यहाँ पर शिव के द्वारा जो सृष्टि की जाती है वह चित् और आनन्द से न होकर इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति के माध्यम से होती है, जो शिव के स्वातन्त्र्य पर पूर्ण रूप से निर्भर रहती है। वह सृष्टि को अपनी इच्छा से संचालित करता रहता हैं।

शिव बिना किसी प्रयोजन के सृष्टि करता है, किन्तु शैव दर्शन के सृष्टि विचार में कई समस्याएँ उत्पन्न होती है, यथा— किस प्रकार निरपेक्ष तत्त्व (शिव) सापेक्ष हो जाता है अथवा किस प्रकार चित् जड़रूप हो जाता है, किस प्रकार सत्य आभास हो जाता है? इन समस्याओं के समाधान में काश्मीर शैव दार्शनिक अपना **'स्वातन्त्र्यवाद'** प्रस्तुत करते हैं। शिव के स्वातन्त्र्य द्वारा सब कुछ संभव हो जाता है।[19] काश्मीर शैव दर्शन में परमशिव को स्वतन्त्र—स्वभाव के रूप में जाना जाता है। यह सृष्टि भी उसके स्वतन्त्र स्वभाव का परिचायक हैं। वह हर प्रकार के आन्तरिक और बाह्य बाध्यता से मुक्त होकर मात्र आत्मविलास के वशीभूत होकर सृष्टि करता है। उसे किसी प्रकार की बाह्य बाध्यता इसलिए नहीं है कि वह एकमात्र पूर्ण सत्ता है, उसे किसी कार्य के लिए दूसरे पर निर्भर नहीं रहना पड़ता और आन्तरिक बाध्यता भी नहीं है, क्योंकि वह पूर्ण है ओर उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं है।[20] अतः वह हर प्रकार की बाध्यता

से मुक्त होकर अपने मौज में जब चाहता है तब सृष्टि करता है जब नहीं चाहता है तब संहार करता है। इसलिए काश्मीर शैव दार्शनिकों ने स्वातन्त्र्यवाद को विशेष महत्व दिया है।

काश्मीर शैव दर्शन में सृष्टि शिव का लीला विलास है। इस दर्शन के अनुसार परमशिव ही नाना प्रकार की विचित्रताओं के साथ सर्वत्र स्फुरित हो रहा है। परमशिव का स्पन्दरूप आनन्द उसके अपने ही परमेश्वरता के विलास का विमर्शरूप है।[21] इस स्वात्म आनन्द में सदा विभोर रहता हुआ परमशिव आनन्द में स्पन्दमान रहता है और उसका यह आनन्द–स्पन्दन ही विश्व बन जाता है।[22] वह अपने स्पन्द–स्वातन्त्र्य से विभिन्न विचित्र रूपों में प्रकाशित होकर भी वस्तुतः अविचित्र होकर अकेला ही रहता है। सृष्टि और प्रलय शिव की क्रीड़ा है जिसे उसके विमर्शरूपता का उन्मेष और निमेष कहा जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि काश्मीर शैव दर्शन में सृष्टि–प्रक्रिया पूर्ण रूप से शिव के स्वभाव पर आश्रित है। उसे इस क्रिया को करने के लिए न किसी प्रकार का बंधन है और न किसी प्रकार का दबाव। इस क्रिया के लिए वह पूर्णरूप से स्वतन्त्र रहता है। वह किसी उद्देश्य के वशीभूत होकर भी सृष्टि नहीं करता। वह केवल अपनी स्पन्दात्मक गतिशीलता के कारण अनन्त–अनन्त रूपों में अभेद से भेदाभेद में और वहाँ से पूरे भेद में अनन्त–अनन्त प्रकारों से उतरता ही रहता है और विपरीत क्रम से अनन्त वैचित्र्यमयी लीला के द्वारा भेद से भेदाभेद पर और वहाँ से अभेद पर चढ़ता है। अतः शिव सृष्टि में और सृष्टि में शिव सर्वदा आभासित होता रहता है और यह सृष्टि प्रक्रिया चलती रहती है।

संदर्भः

1. काश्मीर शैव दर्शन के मूल सिद्धान्त, डॉ. कैलाशपति मिश्र, पृ0 15

2. स्पन्दकारिका, पृ0 2–4

3. स्पन्द निर्णय, पृ0 4

4. शिवदृष्टि, अ0 4 ।5

5. स्वच्छन्दतन्त्र टीका, भाग–6, पृ0 29

6. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, 1 ।1 ।2

7. शिव परमकारणम्। –तन्त्रालोक, आ0 1 ।88

8. शुद्धं तत्त्वं परमशिवाख्यं तत्र यदा विश्वमनुसन्धत्ते तन्मयमेव तदा। –शिवसूत्रविमर्शिनी, पृ0 35

9. स भगवान् अनवच्छिन्नप्रकाशानन्दस्वातन्त्र्यपरमार्थी महेश्वरः। –ईश्वर–प्रत्यभिज्ञा–विवृत्ति विमर्शिनी, भाग–1, पृ0 31

10. शिवसूत्र, 3 ।9

11. तन्त्रालोक, भाग–6, आ0 9 ।22

12. यथान्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः।
तथा हृदयबीजस्थः विश्वमेतच्चराचरम्। क्षेमराज (पराप्रवेशिका)

13. शुद्धं तत्वं परमशिवाख्यं तत्र यदा विश्वमनुसन्धते तन्मयमेवतत। –शिवसूत्रविमर्शिनी, पृ0 35

14. एवं स्वभावत्ववादेव च अस्य न अत्र परापेक्षा इति। तन्त्रालोक टीका, भाग–9, पृ0 13

15. तथाभासन योगोऽतः स्वरसेनास्थ विजृम्भते। तन्त्रलोक, अ0 15 ।266

16. बोधपंचदशिका, श्लोक–6

17. शिवदृष्टि, 3 ।2–3

18. शक्तयोऽस्य जगत् कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः। तन्त्रलोक, भाग–3, आ0 5 ।40

19. तस्य स्वातन्त्र्यभावो हि किं किं यन्न विचिन्तयेत्। तन्त्रालोक 1–36

20. स एव परानपेक्षः पूर्णत्वादानन्दरूपो
यथा नृपः सार्वभौमः प्रभावामोदभरितः। शिवदृष्टि, पृ0 406

21. स्पन्दनिर्णय 3 ।4

22. शिवस्तोत्रावलि, 13–1